पूज्य श्री लालचंदभाई का प्रवचन
प्रश्नोत्तरी, ता. २६-३-१९८९
शिकोहाबाद, प्रवचन नंबर P ०१

Version 2

अभी हमने ७:३० से ८:१५ तक चर्चा रखी है। सुबह प्रवचन होंगे, ८:३० से ९:३० तक। अभी चर्चा का समय है। किसी भाई और बहनों को प्रश्न हो तो कर सकते हैं।

मुमुक्षु:- जैसे कल हमने ज्ञान-गोष्ठी में पढ़ा था कि पर्याय, पर्याय में.....

उत्तर:- ज्ञान-गोष्ठी में है...अच्छा! कल लाना पुस्तक, पुस्तक लाना। पुस्तक में है। सामने पुस्तक हो तो ख्याल आवे कि क्या है?

मुमुक्षु:- पर्याय सत् है, ये बात है।

उत्तर:- पर्याय सत् है। हाँ!

मुमुक्षु:- और उसमें परमाणु का दृष्टांत दिया है कि उसमें रंग गुण की पर्याय है, वो एक समय पहले....रंग गुण तो साफ था।

उत्तर:- गुण तो त्रिकाली है। मगर उसकी पर्याय में फेरफार होता है। कभी लाल, कभी सफ़ेद, कभी काला, ये क्या है? क्योंकि गुण तो सरखा (एक समान) होता है, सब परमाणु में। एक परमाणु, छूटा (स्वतंत्र) परमाणु लेना, स्कन्ध नहीं। दो परमाणु लो। एक परमाणु में जो गुण है, ऐसा (ही) दूसरे परमाणु में गुण है। तो एक (परमाणु के) गुण की पर्याय लाल होती है और ये (दूसरे परमाणु के) गुण की पर्याय काली हो जाती है। तो पर्याय में फर्क है, गुण में फर्क तो नहीं है। तो नक्की होता है कि परिणाम गुण से नहीं होता है। परिणाम से... अपनी योग्यता से परिणाम होता है। गुण से परिणाम नहीं होता है। गुण और द्रव्य से जो परिणाम होवे, तो दोनों ही परमाणु की अवस्था एक जैसी ही होनी चाहिए। समझे?

ऐसे, ये जीव है, जीव, सब आत्मा। तो एक आत्मा में क्रोध होता है, दूसरे आत्मा में क्षमा का भाव होता है। तो गुण तो सरखा (एक समान) है, गुण तो सरखा (एक समान) है। चारित्र नाम का जो गुण है, उसकी जो विभाव-पर्याय, क्रोध का परिणाम हुआ तो पाप का परिणाम हुआ और क्षमा का परिणाम हुआ तो पुण्य का परिणाम, शुभभाव हुआ। तो दो जीव में गुण तो सरखा (एक समान) है। चारित्र नाम का गुण है, सरखा है, समान है। गुण और गुणी समान होते हैं, अनादि-अनंत। गुण में कभी कुछ फेरफार होता नहीं है। फेरफार (जो) होता है, (वो) परिणाम में होता है। और जिसकी द्रष्टि परिणाम पर है, उसको ऐसा लगता है कि मैंने क्रोध किया और अभी मैंने क्रोध को व्यय होकर (करके) क्षमा मैंने किया। तो परिणाम पर नज़र (रखने)वाला, वो मिथ्याद्रष्टि हो जाता है।

और परिणाम होने पर भी, परिणाम तो योग्यतानुसार होता है। क्रोध का परिणाम आया... एक को क्रोध का परिणाम आया, तो वो मानता है कि मैंने किया। साधक को क्रोध का परिणाम आता है, तो वो जानता है। मेरे गुण से (क्रोध नहीं आया)। गुण में शक्ति नहीं है क्रोध करने की। शक्ति है जानने की। करने की शक्ति नहीं है आत्मा में। आत्मा में जो करने की शक्ति हो, तो एक को क्रोध और एक को क्षमा, एक को व्यापार, दाल का व्यापार करने का भाव आता है, दूसरे को भगवान की भक्ति (करने) का भाव आता है। दोनों का गुण तो समान है, चारित्र नाम का गुण समान है। तो समान गुण होने पर भी, परिणाम में तफ़ावत (अंतर) लगता है, फेरफार लगता है, तो नक्की हो जाता है कि परिणाम अपनी योग्यता से होता है। परिणाम का कर्ता परिणाम है, उसका (कर्ता, उसका) गुण और द्रव्य नहीं है।

तो अपने गुण और द्रव्य से जब परिणाम नहीं होता है, तो चारित्रमोह के उदय से क्रोध होता ही नहीं है, क्योंकि चारित्रमोह का उदय तो भिन्न तत्त्व है, अजीवतत्त्व है, पुदगल-तत्त्व है। समझे? अपनी जो पर्याय में ये

अपराध आया, दोष आया, दोष तो आता है। दोष नहीं आता है, ऐसी बात नहीं है। दोष आने पर भी आत्मा निर्दोष रहता है। क्या कहा? पर्याय में दोष आने पर भी भगवान आत्मा तीनोंकाल निर्दोष ही रहता है। अभी परिणाम के अंदर दोष चालू रहता है, उसका कारण क्या है? परिणाम का दोष टलकर परिणाम में निर्दोषता क्यों नहीं आती है? ये प्रश्न होता है कि नहीं? ये प्रश्न होता है।

तो ये दोष, मिथ्यात्व का दोष, अज्ञान का दोष, अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया का, लोभ (का दोष), ये चालू क्यों रहता है, अनंतकाल से? क्योंकि वो तो विभाव है और विभाव जो टले, तो संवर प्रगट होवे, तो सुख प्रगट होवे। सबको सुख चाहिए। दुःख को तो कोई इच्छता नहीं है। तो इसका कारण (क्या)? दोष की परंपरा टूटती क्यों नहीं है? कि दोष को करनेवाला आत्मा नहीं होने पर भी, दोष को करनेवाला मैं हूँ, (ऐसा मानना) वो ही दोष है। मैं दोष को जाननेवाला हूँ (जो ऐसा माने), तो दोष टल जायेगा। दोष को मैं करनेवाला हूँ, (ऐसा माने) तो दोष की परंपरा चालू रहेगी।

इसका अर्थ ये है कि परिणाम का कर्ता परिणाम है। (जो ऐसा माने) उसकी द्रष्टि, नज़र, अकर्ता-ज्ञायक पर आ जाती है। वहाँ का भाव पहले आता है कि परिणाम का कर्ता परिणाम है। मगर परिणाम का कर्ता परिणाम है, वहाँ लक्ष्य करके आत्मा द्रष्टि में नहीं आता है। वहाँ से हटकर मैं अकर्ता हूँ। परिणाम का कर्ता परिणाम है, मैं तो ज्ञाता-अकर्ता हूँ। तो परिणाम की कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है, तो परिणाम में पलटा आ जाता है। मिथ्यात्व की जगह पर सम्यग्दर्शन होता है और अनंतानुबंधी कषाय की जगह पर स्वरूपाचरण-चारित्र प्रगट हो जाता है और दुःख की जगह पर थोड़ा अतीन्द्रिय आनंद प्रगट (हो जाता है)। (आनंद) थोड़ा आता है, ज़्यादा नहीं आता है। ज़्यादा तो जब अंदर में जम जावे ना, (जब) चारित्रदशा आ जावे ना, तब पूर्ण आनंद आता है।

दोष की परंपरा का कारण क्या है? कि मैं दोषित हूँ (ऐसा मानना)। मैं निर्दोष हूँ और परिणाम में दोष आता है, वो मेरा स्वभाव नहीं है, वो तो विभाव है, मेरा कर्तव्य ही नहीं है। मेरा कर्तव्य तो जानना-देखना है, करना मेरा कर्तव्य नहीं है। कुछ करना नहीं? अरे! जानना, ये करना नहीं? जानना वो ही मोक्षमार्ग है और वो ही करना है। आत्मा को जानना, क्रोध को जानना नहीं, ये ख्याल रखना। क्रोध होता है, उसका लक्ष्य छोड़कर क्रोध से भिन्न ज्ञानानंद परमात्मा जीवतत्त्व विराजमान है। आस्रवतत्त्व विद्यमान है, तब भी जीव विद्यमान है। आस्रव अशुद्ध है और जीव शुद्ध है। कभी? कि (जब) आस्रव उत्पन्न होता है, तभी। कैसा आस्रव? मिथ्यात्व का आस्रव जब होता है, तब भी जीव शुद्ध रहता है। मैं शुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध नहीं हूँ, (ऐसा माने) तो अशुद्ध(ता) टलकर पर्याय शुद्ध हो जाती है।

आत्मा एक है, उसका पड़खा दो है। एक सामान्य और एक विशेष। सामान्य को द्रव्य कहा जाता है। ध्रुव और विशेष को उत्पाद-व्यय पर्याय कहा। पर्याय में दोष आता है और पर्याय में दोष टल जाता है। दोष टलता क्यों नहीं है? कि 'दोष को करनेवाला मैं हूँ', (ऐसा माने) तो दोष की परंपरा चलती है।

बात तो सीधी-सादी है। बात तो कुछ नहीं थी मगर बात-बात में बात बढ़ गई। हमारे प्रेमचंदजी साहब दिल्ली से एक दफ़े आया। बार-बार आता है। ऐसे एक दफ़े उसने कहा, एक दृष्टान्त दिया। समझे? दो बालक पड़ोस में लड़ते थे। तो उसमें सब, बड़ी लड़ाई हो गई। तो पूछा, क्या है? तो कहे वो बालक। अरे! अरे! बालक

लड़ते हैं। कुछ नहीं है उसमें, बात बढ़ गयी। बात तो कुछ (है ही नहीं)। क्या शब्द है?

मुमुक्षु:- बात तो बढ़ गयी, बात में बात। बात तो कुछ भी नहीं थी।

उत्तर:- कुछ भी नहीं थी। ऐसे आत्मा तो परमात्मा निर्दोष था। आत्मा तो निर्दोष था और निर्दोष है और निर्दोष रहेगा, तीनोंकाल। समझे? मगर फिर बात बढ़ गई (अर्थात्) क्या? कि उसकी नज़र राग पर है। मैं रागी, मैं रागी, मैं द्वेषी, मैं मोही, मैं मनुष्य, मैं स्त्री, मैं पुरुष। मैं कर्म का बाँधनेवाला मैं हूँ और कर्म का भोगनेवाला मैं हूँ, द्रष्टि विपरीत हो गयी उसकी। बात-बात में बात बढ़ गयी।

मुमुक्षु:- बढ़ गयी बात में बात। बात तो कुछ भी नहीं थी।

उत्तर:- कुछ भी नहीं थी, इतना ही था। मैं तो जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं हूँ। बस हो गयी, समाप्त बात। मैं तो जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु:- स्पष्टीकरण बहुत ऊँचा आपने फ़रमाया।

उत्तर:- बात छोटी है। अज्ञानी जीव ने बात (को) बढ़ा दिया है। आत्मा का तो भान नहीं उसको और दूसरी एक बात क्या आ गयी? कि साधक को भी निश्चय के साथ व्यवहार आता है, निश्चय के साथ व्यवहार आता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव आता है। करता नहीं है, ध्यान रखना। वो ध्यान रखना, करने का भूत निकालने की बात है। (शुभभाव) आता है। चतुर्थ गुणस्थान में उसके योग्य शुभभाव आता है, उसको जानता है। पंचम गुणस्थान में व्रत आता है, देशव्रत का भाव आता है। आता है मगर टिकता नहीं है, चला जाता है, क्योंकि द्रष्टि ज्ञायक पर है। उसको जानते-जानते जानता है, तो चला जाता है। बाद में पाँच-महाव्रत का भाव भी आता है, भावलिंगी संत को। पाँच-महाव्रत के परिणाम को करनेवाले नहीं हैं। हमारे मुनिराज, आहाहा! वो हमारे मुनिराज हैं, जो करनेवाले नहीं हैं, जाननेवाले हैं। अकेले पाँच-महाव्रत को जाननेवाले, वो भी हमारा मुनि नहीं है। आत्मा को जानते-जानते पाँच-महाव्रत को जान लेते हैं। ऐसे मुनिवर देखे वन में जाँके, राग-द्वेष नहीं मन में। मुनिदशा अलग बात है, अलौकिक बात है। आहाहा! (जो) मुनि को नहीं मानता है, वो जैन नहीं है।

मुमुक्षु:- गुरुदेव फ़रमाते थे, एक दफ़े। मुनि किसको कहिये? जिन्हें गणधर का नमस्कार जिनवाणी सामर्थ है।

उत्तर:- सामर्थ है। हालता-चालता (चलते-फिरते) सिद्ध हैं, वीतरागी मूर्ति हैं। मुनिराज तो वीतरागी प्रतिमा हैं। ओहो! वीतरागी मुनि भावलिंगी संत हैं ना, उनको सारे दिन में तो नींद आती ही नहीं है। रात्रि के पिछले प्रहर में पोन सेकंड के लिए ऊँघ (नींद) आती है। एक सेकंड के लिए जो ऊँघ आ जाये, प्रमाद, तो मुनिपद रहता नहीं है, ऐसी बात है। बाह्य की स्थिति (ऐसी), अंदर की तो, शुद्ध उपयोग है (वो) तो अलौकिक है। ऐसी बात है भैया!

मुमुक्षु:- कितनी सावधान दशा!

उत्तर:- (मुनि की) सावधान दशा (है), प्रमाद दशा नहीं है। प्रमाद तो पाप है, प्रमाद तो पाप है। अप्रमत्त दशा धर्म है और थोड़ी सावधानी हो जाये बंध में, तो पुण्य है, पुण्य है। पुण्यतत्त्व तो उनके पास है। पुण्यतत्त्व भी है और संवरतत्त्व भी है। मगर पुण्य आता है तो निर्जरा के लिए आता है, बंध के लिए आता नहीं है।

मुमुक्षु:- ये क्या रहस्य है?

उत्तर:- रहस्य है कि पुण्य का मालिक नहीं है इसलिए वो निर्जरा हो जाती है। अज्ञानी पुण्य का स्वामी बन जाता है कि मैंने मंदिर बनवाया। अच्छा! तूने बनवाया? मैंने दान दिया। वो स्वामी बन गया। तो उससे कर्म का बंध हो जाता है। आहाहा! निर्जरा नहीं होती है। और पुण्य-पाप का परिणाम तो चतुर्थ गुणस्थान में भी आता है। चक्रवर्ती को भी आता है कि नहीं? पाप का परिणाम आता है, मगर पाप के परिणाम से बंध नहीं होता है, निर्जरा होती है। अल्प-बंध होता है, वो गौण है। अल्प-बंध होता है, वो बात गौण है। अनंत संसार का कारण ऐसा कर्म-बंध निमित्तरूप में नहीं आता है। उपादान में तो भाव आता ही नहीं है।

मुमुक्षु:- निमित्त में नहीं आता है, इसका क्या मतलब है?

उत्तर:- यानि जो पाप का परिणाम आता है, ज्ञानी को भी, उसको इकतालीस कर्म की प्रकृति का बंध होता नहीं है। अल्प-बंध होता है, जो अल्प-संसार का निमित्त-कारण है और उपादान में भी ऐसी योग्यता है कि ज़्यादा कर्म की स्थिति नहीं बंधे, ऐसा ही परिणाम आ जाता है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है, उसका भी उससे रहित, ज्ञाता है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी मेरे में नहीं है। मेरे ज्ञान का ज्ञेय है, कर्ता का कर्म नहीं है, ऐसी बात है।

मुमुक्षु:- क्षायिक-सम्यग्दर्शन के परिणाम के बाद मिथ्यादर्शन का परिणाम क्यों नहीं आता है?

उत्तर:- नहीं आता है। क्षायिक हो गया ना, क्षायिक हो गया ना।

मुमुक्षु:- क्यों नहीं आता? परिणमन (तो) स्वभाव है।

उत्तर:- परिणमन स्वभाव है। तो परिणमन स्वभाव हो तो मिथ्यात्व आ जावे, (अगर ऐसा हो) तो (फिर) सिद्ध भगवान को (भी) परिणमन स्वभाव तो है, मगर (मिथ्यात्व) आ जाता नहीं है। परिणमन स्वभाव भैया! दोष का कारण नहीं है। एक बात समझो कि जो, आत्मा का परिणमन जो स्वभाव है, वो दोष नहीं है। परिणाम में पर की सन्मुखता, वो दोष है और परिणाम में आत्मा की सन्मुखता, वो तो गुण है। परिणमन स्वभाव दोष का कारण नहीं है क्योंकि परिणमन तो अरिहंत भगवान को भी होता है, सिद्ध भगवान को भी होता है और मुनिराज को भी होता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टि को (भी) क्षायिक परिणाम तो होता है, मगर मिथ्यात्व आता नहीं है। क्योंकि उसकी श्रद्धा में, आहाहा! मैं केवल अकर्ता और ज्ञायक ही हूँ, ऐसी क्षायिकदशा उसकी हो गयी है।

मुमुक्षु:- परिणाम (का) सहज षट्कारकरूप परिणमन होता है। लेकिन आपने कहा कि परलक्ष्य से मिथ्यादर्शन रूप परिणाम हुआ। तो अब परलक्ष्य नहीं है, ये सम्यग्दर्शन परिणाम है। लेकिन परिणाम तो आप कह रहे हैं (कि) षट्कारक रूप स्वतंत्र है, फिर लक्ष्य क्यों आया उसमें?

उत्तर:- नहीं! लक्ष्य, जब स्वतंत्रपने आत्मा अपने स्वभाव से च्युत हो जाता है, च्युत होकर अशुद्ध-उपादान होता है, प्रगट, राग, तो राग में निमित्त पर का लक्ष्य होता है। राग (के समय पर्याय) का लक्ष्य आत्मा पर नहीं है, इतना बताना है। राग होता है, वो तो स्वतंत्र अपनी उपादान-शक्ति से होता है। परिणमन शक्ति होने पर भी, उसकी योग्यता है तो राग होता है। तो राग होता है, तो उसका लक्ष्य पर(द्रव्य) पर होता है, स्व(द्रव्य) पर होता नहीं है। जब वीतरागभाव प्रगट होता है, तो आत्मा के ऊपर लक्ष्य होता है। तो आत्मा के लक्ष्य से वीतरागता हुई, ऐसा कहा जाता है और दर्शनमोह के आश्रय से मिथ्यात्व हुआ, ऐसा कहा जाता है।

सचमुच तो निरपेक्ष मिथ्यात्व होता है। दर्शनमोह से हुआ, वो निमित्त का कथन है।

मुमुक्षु:- (जब) निरपेक्ष हुआ था, (तो) फिर क्यों नहीं हुआ, सम्यग्दर्शन के बाद?

उत्तर:- क्या?

मुमुक्षु:- इनका ऐसा प्रश्न है कि पर्याय का कर्ता पर्याय है। पर्याय का षट्कारक पर्याय है। पर्याय, पर्याय से ही होती है - एक तरफ तो आप ऐसा कहते हो।

उत्तर:- हाँ!

मुमुक्षु:- और दूसरी तरफ (ऐसा) कहते हो कि पर के लक्ष्य से राग होता है और आत्मा के लक्ष्य से वीतरागता होती है। (तो) उसे कैसे समझना चाहिए?

उत्तर:- हाँ! पहले तो आप निरपेक्ष समझो।

मुमुक्षु:- हाँ! निरपेक्ष ही समझना चाहते हैं, साहब।

उत्तर:- बाद में सापेक्ष लो। सापेक्ष की बात आवे, तब वो व्यवहार की बात है, ऐसा समझना। जब निरपेक्ष की बात आवे, वो बात निश्चय की है, ऐसा समझना, परिणाम के लिए। परिणाम की बात है, द्रव्य की बात (नहीं है)। जब राग आता है ना, राग। तो राग आता है, (तो) उसकी अंतर्गर्भित पर्यायरूप परिणमन शक्ति है। वो राग आता है, पर्याय में। राग आता है (पर्याय में)। पर्याय तो, उत्पाद-व्यय तो स्वभाव है और राग उसका विशेषण है। क्या कहा? उत्पाद-व्यय तो आत्मा का, पर्याय का स्वभाव है। समझे? मगर वो जो उत्पाद पर्यायरूप हुआ, प्रगट पर्याय हुई, चारित्र गुण की पर्याय हुई, तो उसमें राग की योग्यता है, तो राग प्रगट होता है। वो आत्मा से (हुआ) नहीं और चारित्रमोह के उदय से भी (हुआ) नहीं है। इसका नाम क्षणिक-अशुद्ध-उपादान कहा जाता है।

मुमुक्षु:- सिद्धों में राग नहीं है तो योग्यता नहीं रही उनमें?

उत्तर:- नहीं रही। खलास हो गयी। खत्म हो गई।

मुमुक्षु:- क्या योग्यता नहीं है साहब?

उत्तर:- बिल्कुल नहीं है। योग्यता जो थी, वो सब समाप्त हो गई।

मुमुक्षु:- राग जो हुआ था, वो कर्म-सापेक्ष हुआ था?

उत्तर:- निरपेक्ष होकर कर्म-सापेक्ष हुआ था। निरपेक्ष होकर कर्म-सापेक्ष हुआ था। कर्म से राग नहीं होता है। कर्म तो निमित्तमात्र था। अपने उपादान से राग होता है। त्रिकाली-उपादान से नहीं और निमित्त से भी नहीं होता है। वो निरपेक्ष एक समय की पर्याय सत् है, अहेतुक है। भैया! वो अशुद्ध-पारिणामिक का विषय है। वो निमित्त की सापेक्ष(ता) से देखो तो नैमित्तिक है। निमित्त की सापेक्ष(ता) से देखो राग को, तो नैमित्तिक है। निमित्त से निरपेक्ष देखो उपादान, तो अशुद्ध-पारिणामिक है।

मुमुक्षु:- अशुद्ध-पारिणामिक? ये बात यहाँ से....

उत्तर:- अशुद्ध-पारिणामिक। बस! हाँ! हो गया ना? बस, ठीक है।

इस जिनागम में सब बात का खुलासा है। सब बात का खुलासा है। बात ऐसी है कि जो आत्मार्थी होकर, आत्मा के लक्ष्य से, अपना प्रयोजन सिद्ध करना है (ऐसे अभिप्राय से पढ़े, तो ठीक)। समझकर दूसरों

को समझाना है, पंडित बनना है और वक्ता बनना है (ऐसे अभिप्राय से पढ़े), उसको आत्मा हाथ में आनेवाला नहीं है। अपना हित कैसे होवे, ऐसा अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए, आत्मा का लक्ष्य रखकर, आत्मा का लक्ष्य कायम रखकर, जो शास्त्र-स्वाध्याय करता है, जिनेन्द्र भगवान की वाणी सुनता है, देशनालब्धि, तो उसको सही मार्ग मिल जाता है। अपना प्रयोजन क्या है, इसके ऊपर आधारित है सब।

मुमुक्षु:- पारिणामिकभाव त्रिकाल शुद्ध है?

उत्तर:- वो द्रव्य का, द्रव्य का।

मुमुक्षु:- और ये अशुद्ध-पारिणामिक?

उत्तर:- ये द्रव्य का पारिणामिकभाव त्रिकाल शुद्ध है। और राग जो अशुद्ध-पारिणामिक है, (वो) क्षणिक-अशुद्ध है, अनित्य-अशुद्ध है।

मुमुक्षु:- तो पारिणामिक के (भी) दो भेद? एक द्रव्यरूप एक पर्यायरूप?

उत्तर:- हाँ! पारिणामिक के दो भेद। एक शुद्ध-पारिणामिक और एक अशुद्ध-पारिणामिक।

मुमुक्षु:- अशुद्ध-पारिणामिक यानि पर्यायरूप?

उत्तर:- पर्याय का स्वभाव। पर्याय के विभाव-स्वभाव का नाम अशुद्ध-पारिणामिक है। पर्याय का विभाव-स्वभाव, यानि उसका धर्म। धर्म यानि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं। समझ में आया भैया? समझे? पर्याय का विभाव-स्वभाव, उसका नाम अशुद्ध-पारिणामिक है। कोई, किसी की, पर की अपेक्षा उसमें नहीं लेना। जो अपेक्षा लो तो व्यवहार हो गया। समझे?

मुमुक्षु:- तो ये व्यवहार रहा, शुद्ध, द्रव्य का?

उत्तर:- पर्याय का, पर्याय का व्यवहार। कभी राग हुआ ना, वो तो निरपेक्ष हुआ। मगर राग होता है, राग जब होता है, तब (पर्याय को) आत्मा का लक्ष्य नहीं रहता है, पर का लक्ष्य रहता है। तो वो पर के लक्ष्य से हुआ, ऐसे समझाया जाता है। होता तो है अपनी योग्यता से, मगर अज्ञानी जीव को समझाने के लिए व्यवहार द्वारा ही निश्चय समझाया जाता है। पर्याय का निश्चय समझाने के लिए वहाँ से समझाते हैं। कि राग क्यों होता है? कि चारित्र का उदय आया, उसमें जुड़ गयी पर्याय, तो राग हो गया। इसका अर्थ पर्याय पराधीन नहीं है। पर्याय स्वाधीन (है), वो उसका विभाव-स्वभाव है।

मुमुक्षु:- विभाव-स्वभाव है?

उत्तर:- हाँ! विभाव-स्वभाव है। स्वभाव का अर्थ है, धर्म। पर्याय ने राग को एक समय के लिए धारण (कर) रखा है। क्या कहा? पर्याय ने एक समय के लिए राग को धारण (कर) रखा है, इसलिए उसका धर्म, पर्याय का धर्म है। एक समय के लिए राग (को) आत्मा ने धारण नहीं (कर) रखा है। पर्याय ने धारण (कर) रखा है, मगर (वो भी) एक समय के लिए। दूसरे समय वीतरागता प्रगट हो जाती है।

मुमुक्षु:- आत्मा ने तो एक समय के लिए भी (राग को) धारण ही नहीं किया।

उत्तर:- एक समय के लिए भी हाँ! (राग को) धारण ही नहीं किया। उसमें राग घुसता ही नहीं है। आहाहा! अकेला ऐसा किला है, विज्ञानघन स्वभाव है। आत्मा, उसमें राग का प्रवेश होता (ही) नहीं है। ऊपर-ऊपर राग होता है। ऊपर-ऊपर, आता है और जाता है, आता है और जाता है। भगवान आत्मा आता ही नहीं

और जाता भी नहीं है। वो तो है, है और है। वो मैं हूँ, वो मैं हूँ। आता है, जाता है, वो मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो ज्ञायक हूँ, स्वभाव से ज्ञायक हूँ।

नीलम की बा हैं ना, मम्मी। मम्मी हैं ना। वो वहाँ आयीं थीं, देवलाली। उनको मस्ती चढ़ गयी (कि) मैं तो स्वभाव से ज्ञायक हूँ। क्या शब्द बोलती थीं?

मुमुक्षु:- मैं तो स्वभाव से ज्ञायक ही हूँ।

उत्तर:- मैं तो स्वभाव से ज्ञायक ही हूँ, ऐसा, निश्चय। कथंचित् नहीं, सर्वथा। आत्मा सर्वथा शुद्ध है, भैया! शब्द क्या आया? आत्मा बोलता हूँ मैं हो! मैं क्या बोलता हूँ? आत्मा तीनोंकाल शुद्ध है। सर्वथा शुद्ध है। आहाहा! आत्मा मलिन होता नहीं है। परिणाम के अंदर मलिनता भी होती है और मलिनता टलकर निर्मलता भी आती है।

जैसे जल है ना पानी, पानी। अपनी योग्यता से जो उष्ण होता है, अपनी योग्यता (से), वो निरपेक्ष, निश्चय, अशुद्ध पारिणामिक, उसका धर्म और उसमें निमित्त अग्नि (को) कहा जाता है। समझे? मगर उष्ण पर्याय हुई तो भी पानी तो आहाहा! शीतल, शीतल, शीतल, ठंडा, ठंडा। तो उसमें टकावारी करो ना थोड़ा। भाई 'ना' बोलते हैं। समझ में आ गया। सौ टका वो तो शीतल ही है, ऐसा है।

हाँ! टकावारी करो तो पर्याय में करो ना कि पचास टका उष्ण, पचहत्तर टका, सौ टका उष्ण। उसमें तारतम्यता रहती है, परिणाम में, मगर द्रव्य में नहीं। हीनाधिकता पर्याय में होती है। हीनाधिकता पर्याय में तो होती है। स्वभाव तो, जैसे सिद्ध परमात्मा (हैं), ऐसा मैं हूँ। जो निगोद में, सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष-मँझार। निश्चय भेद कछु है नाहीं, भेद गिने संसार। आहाहा!

मुमुक्षु:- मैं ज्ञायक का ही ज्ञायक (हूँ) और ज्ञायक ही मैं हूँ, यही?

उत्तर:- यही निश्चय है। ज्ञायक का ज्ञायक व्यवहार है। ज्ञायक ही हूँ, वो निश्चय। समझाने के लिए ज्ञायक का ज्ञायक (कहा जाता) है। यानि ज्ञेय का ज्ञायक नहीं है, इतना समझाने के लिए, आत्मा, आत्मा को जानता है (ऐसा कहते हैं)। समझे? आत्मा, आत्मा को जानता है। इसमें क्या निषेध हुआ? कि पर को जानता नहीं है, ऐसा भेदरूप व्यवहार से समझाया जाता है। मगर आत्मा, आत्मा को जानता है, तो दो आत्मा तो है ही नहीं। दो आत्मा तो है ही नहीं। हाँ! और दो का एक हो जाता है, भेद निकल जाता है। समझे?

मुमुक्षु:- ज्ञायक का ज्ञायक ही हूँ, वो पर्याय-द्रव्य का भेद हो गया?

उत्तर:- ये जो है ना ज्ञायक, ज्ञायक का है। ज्ञायक, ज्ञायक का है, वो भेद से समझाया जाता है। पर भेद को समझावें, तब राग की उत्पत्ति होती है। मैं तो ज्ञायक ही हूँ, तो अनुभव हो जाता है। अनुभव के काल में, मैं आत्मा को जानता हूँ, ऐसा भेद भी नहीं रहता। जानता है, मगर भेद उत्पन्न होता नहीं है। अच्छी बात है! शिकोहाबाद में प्रश्न अच्छे आते हैं। क्या?

मुमुक्षु:- वो तो बड़ी अपूर्व-दशा हो गई, साहब?

उत्तर:- अपूर्व-दशा है और सब कर सकते हैं। कोई कर्म आड़े आता नहीं है। शरीर का रोग अड़ता नहीं है। आहाहा! आपके घर में आप जाते हैं, कभी। तो May I come in Sir (ऐसा) बोलते हैं? घर में जाने में क्या? ऐसे आत्मा को देखने में कौन रुकावट करे? हें? कोई रूकावट करनेवाला जगत में नहीं है।

मुमुक्षु:- ऐसी रुकावट क्यों हो रही है अनंतकाल से?

उत्तर:- रूचि नहीं है। उसको विश्वास नहीं है। संयोग में सुख मानता है। स्वभाव में सुख है, ऐसा निर्णय उसने किया नहीं है। पैसे में, लक्ष्मी में, सत्ता में, अच्छा मकान, अच्छी मोटर, अपनी इज्जत अच्छी, अपनी लड़की और लड़के का विवाह अच्छे घर पर होवे, रुपया लेकर आवे, ऐसे बहुत गड़बड़ अंदर रहती है।

मुमुक्षु:- बहुत गड़बड़ अंदर रहती है।

उत्तर:- अंदर गड़बड़ रहती है तो कहाँ से अंदर में जावे आत्मा? चाहिए (तो) दूसरी चीज़, उसको, अभिप्राय में, ये चाहिए, ये चाहिए, ये चाहिए, ये चाहिए और आत्मा क्यों प्राप्त नहीं होता है? आहाहा! आत्मा की रुचि नहीं है। ऊपर-ऊपर की रुचि काम नहीं आती। अंदर की रुचि और तीव्र रूचि अंदर में उपजे, तो वीर्य अंदर में आ जाता है। रूचि अनुयायी वीर्य।

मुमुक्षु:- साहब! ऊपर-ऊपर की रूचि और अंदर की रूचि में अंतर क्या है?

उत्तर:- ऊपर-ऊपर की रूचि तो बस ये सब प्रवाह चलता है ना, तो चलो अपने स्वाध्याय, गुरुदेव पधारें है, व्याख्यान में चलो। आहाहा! बढ़िया बात आती है। आत्मा की बात बढ़िया, बढ़िया बात शब्द में रहती है। बाकी अंदर में थोड़ी उतरती है और थोड़ी उतरे तो (फिर) थोड़े टाइम में भुलाई (खो) जाती है। भुलाई जाती है समझे ना? मिट जाती है। हाँ! वो धूल के अंदर अक्षर लिखे, धूल के अंदर। धूल है ना, ज़मीन। उसमें अक्षर लिखे, अपना नाम, तो पवन आवे तो मिट जाता है। उसके पीछे पड़ना चाहिए। समझे? CA की परीक्षा देते हैं ना कोई। मुंबई में बनाव बना। तो चालीस साल तक उसने (CA) की परीक्षा दी। कंटाला ही नहीं आता है (उसको)। बाद में पास हो गया।

ऐसे इसमें कंटाला नहीं आना चाहिए। आज प्राप्त नहीं हो तो कल होगा, परसों होगा। विश्वास रखो। अपनी चीज़ है ना, अपनी चीज़ को अपने को देखना है। अपने को कोई बाहर से चीज़ लाना नहीं है। लाने की बात नहीं है। आत्मा मौजूद है, वर्तमान। आहाहा! अंदर देखने से वो दिखाई देता है। बाहर देखने से (वो) अंदरवाला दिखाई (नहीं देता है)।

एक बार हमारे राजकोट में ऐसा प्रश्न आया कि ये गुरुदेव प्रशंसा करते हैं। ज्ञानी सब, प्रशंसा आत्मा की करते हैं। थकते ही नहीं है। ऐसे आहाहा! आहाहा! करें। समझे? ऐसा आत्मा है, तो चौबीस घंटे ये करता क्या है आत्मा? ऐसा जो आत्मा है, तो आत्मा चौबीस घंटे करता क्या है? समझे? तो मैंने जवाब दिया कि दर्शन देने के लिए रहता है, दर्शन दिया करता है, मगर वो दर्शन लेता नहीं है। आहाहा! मंदिर में प्रतिमा जी हो, जो अंदर में जावे, उसको दर्शन देवे। दर्शन देने के लिए तो तैयार है, मगर लेनेवाला चाहिए ना। ये देने के लिए तैयार है, मगर लेनेवाला चाहिए, तो मिल जाता है।

आत्मा के दर्शन से धर्म की शुरुआत होती है भैया! वो सत्य क्रिया है। आत्मा का ज्ञान, आत्मा का श्रद्धान और आत्मा का लीन आचरण, बस, वो निश्चय मोक्षमार्ग है। हाँ! मोक्ष का मार्ग है। मगर मोक्ष नहीं पूरा होता है, तो बीच में, साधक को भी जानने के लिए, जानने के लिए, जाने के लिये आता है राग। जानने के लिए और जाने के लिए आता है (राग), तो जानता है। बस जाना (ही) करता है। आत्मा को जानते-जानते परिणाम को जानता है। बस!

मुमुक्षु:- आपने सुबह बात कही थी कि आत्मा पर को नहीं जानता है। तो ज्ञायक, ज्ञायक के बल पर ही पर को नहीं जानता?

उत्तर:- हाँ! ज्ञायक, ज्ञायक का बल आता है, अंदर में कि, मेरे ज्ञान में समय-समय पर आबाल-गोपाल सबको, आत्मा ही जानने में आता है। समझे? आत्मा का जब ऐसा घुटण (रटण) आ जावे अंदर में...पहले व्यवहार-श्रद्धा, निश्चय-श्रद्धा के पहले। मेरे ज्ञान में आत्मा ही जानने में आता है। सचमुच तो पर जानने में नहीं आता है। वो बात इतनी बढ़िया है, इतनी सुंदर है कि उसकी चर्चा करने जैसी है। छोड़ने जैसी नहीं है।

एक उसका सरल उपाय आचार्य भगवान ने बताया। एक अमितगति आचार्य हो गए, जिन्होंने योगसार नाम का शास्त्र लिखा है। समझे? ये योगसार नाम का शास्त्र, अमितगति आचार्य का योगसार है। समझ गए? तो उसमें बहुत सरलता से आत्मा का अनुभव कैसे हो, ऐसी बात बता दिया है। तो पहले तो दृष्टांत दिया उसमें कि, ये जो प्रकाशक, दीपक, दीपक यानि प्रकाशक और प्रकाश उसकी पर्याय, प्रकाश यानि द्रव्य की पर्याय। प्रकाशक द्रव्य और प्रकाश उसकी पर्याय। बराबर है ना? ठीक है? और घट-पट हैं वो प्रकाश्य हैं, प्रकाश्य। तो प्रकाश, घट को प्रकाश प्रसिद्ध करता है, तो (घट-पट) प्रकाश्य। प्रकाशक, प्रकाश और प्रकाश्य। समझे? वो तो सीधा दाखला (दृष्टांत) है ना। तो आचार्य भगवान कहते हैं, फ़रमाते हैं कि जो प्रकाश है, वो घट से तो सर्वथा भिन्न है। वो (प्रकाश), भिन्न को (तो) प्रसिद्ध करता है, घट को, घट को प्रसिद्ध करता है। और जो प्रकाश से वो प्रकाशक (दीपक) कथंचित् अभिन्न है, उसको प्रकाशित नहीं करता है (ऐसा तू मानता है), वो तो हमको आश्चर्य की बात लगती है। दृष्टांत समझे? अभी सिद्धांत। फिर से दोबारा। कि प्रकाशक द्रव्य, प्रकाश पर्याय, किसकी? घड़े की या (दीपक की)? दीपक की। पक्का? वो पर्याय तो दीपक की है ना। घट की है? नहीं। सर्वथा कि कथंचित्? (सर्वथा)। घट की पर्याय प्रकाशित होती ही नहीं है। प्रकाशक की (ही पर्याय प्रकाशित होती है)। सूर्य का ही प्रकाश होता है। समझे? तो वो जो भिन्न हैं, घट-पट आदि, वो उसके प्रकाश के माध्यम से तेरे को परपदार्थ दिखते हैं और जो प्रकाश से कथंचित् अभिन्न है दीपक, वो तेरे को दिखाई नहीं देता है, हमको तो आश्चर्य लगता है। समझ में आया? समझ में आया कि नहीं?

अब दूसरा, उस पर ही एक दृष्टांत मैं देता हूँ। मैं घर का दृष्टांत (देता हूँ)। वो तो आचार्य भगवान की बात मैंने कही। अभी उसके ऊपर घर का दृष्टांत देता हूँ कि एक दफ़े ऐसा हुआ कि प्रोफेसर साहब ने, प्रोफेसर यहाँ बैठे हैं कि नहीं एक? ये प्रोफेसर हैं ना, बैठे हैं ना। तो प्रोफेसर साहब ने क्या किया, एक दफ़े? कि पचास विद्यार्थी था, पचास। होशियार हो, बुद्धिवाला। उनको कहा कि आज तो रात को परीक्षा देनी है। तो रात को मैं पेपर दूँगा और एक घंटा का टाइम है, तय हुआ। एक घंटे के अंदर सबको पेपर पूरा होकर मेरे को दे देना है। बड़ा हॉल था, पचास (विद्यार्थी) बैठ सकें, सब। पेपर निकाला कि इस हॉल में कौनसी-कौनसी चीज़ हैं, लिखकर दे देना। इतना लिखा। क्या लिखा? कि इस हॉल में कौनसी-कौनसी चीज़ हैं? जितनी (भी) चीज़ आपके ख्याल में आवें, वो लिख देना। बस, सादी बात है। तो पेपर निकाला। एक घंटा, पोना घंटा में तो पेपर पूरा कर दिया। सूक्ष्म में सूक्ष्म वस्तु (जो हॉल में थी), यहाँ क्या कहते हैं? सूक्ष्म में सूक्ष्म पदार्थ है, छोटी में छोटी (वस्तु), पिन, उसको भी उसमें लिख दिया। सब लिख दिया। अब देख-देखकर लिखा सबने। समझे? पेपर आ गया। पेपर देखते ही ५० नापास (फेल)। तो हल्ला मचा दिया कि सर ५० नापास (फेल) नहीं हो सकते हैं।

उनपचास को नापास (फेल) करो और (जो) नापास (फेल) किया (है), तो कारण दे दो हमको। Please sit down. Please sit down. शांति रखो ज़रा। प्रोफेसर साहब ने कहा कि ये जो आपने सब चीज़ लिखीं, मगर ट्यूबलाइट आपने नहीं लिखी, तो नापास (फेल) हो गया। क्या कहा? नापास (फेल) होगा कि नहीं? समझे?

ये सचमुच तो धर्म सरल है। अधर्म कठिन है। अधर्म तो, आत्मा पर बलात्कार करता है, तब अधर्म की प्रगटता होती है। आत्मा पर बलात्कार करता है। कर्ता न होने पर भी, मैं राग का कर्ता हूँ (ऐसा) बलात्कार करता है। हाँ! तो अधर्म की दशा प्रगट हो जाती है। धर्म तो सरल है, सहज है, सुगम है, स्वाधीन है, स्वतंत्र है।

आहाहा! तो ये दृष्टांत पर अभी, योगसार के दृष्टांत पर, अभी सिद्धांत मैं कहूँ।

आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि जो एक ज्ञायक है, आत्मा, ज्ञायक है। उसके अंदर उपयोग लक्षण समय-समय पर प्रगट होता है ना, **उपयोगोलक्षणम्।** है कि नहीं, तत्वार्थ सूत्र का? सूत्र है, **उपयोगोलक्षणम्।** उपयोग प्रगट होता है। ज्ञान प्रगट होता है। वो ज्ञान के अंदर स्वपरप्रकाशक शक्ति होने से, वो परपदार्थ भी अंदर में झलकता है। परपदार्थ को देखता है, ऐसा मैं नहीं बोलता हूँ। परपदार्थ उसमें झलकते हैं और ज्ञायक भी उसमें झलकता है। प्रतिभास होता है, दो का। स्वच्छता है ना उपयोग में, तो प्रतिभास तो होता है। तो आचार्य भगवान कहते हैं (कि) तेरे ज्ञान में ये शास्त्र जानने में आता है, ये प्रतिमा जानने में आती है, दुकान जानने में आती है, जो (कि) ज्ञान से भिन्न (है)। ज्ञायक से तो भिन्न है ही दुकान, मगर प्रगट हुए ज्ञान से भी भिन्न है। रोटी, दाल, साग, भात, तेरे को दिखाई देता है। ज्ञान से जो भिन्न पदार्थ है, सर्वथा भिन्न, कथंचित् भिन्न-अभिन्न नहीं। ऐसे भिन्न पदार्थ तेरे को दिखने में आता है और उस ज्ञान से कथंचित् आत्मा अनन्य, अभिन्न है, वो तेरे को दिखने में नहीं आता है, हमको तो (इस बात का बड़ा) आश्चर्य होता है। इतनी सरल बात, सरल शब्दों से बता दिया। आहाहा!

मुमुक्षु:- जिस प्रकाश से प्रकाशक को उन्होंने जाना, उसको आप भिन्न कैसे कहते हैं?

उत्तर:- भिन्न कहाँ? अभिन्न है। कथंचित् अभिन्न कहा, भिन्न नहीं। उससे सर्वथा भिन्न।

मुमुक्षु:- पर्याय में द्रव्य आता नहीं है, तो प्रकाश जो आया प्रकाशक से आया?

उत्तर:- प्रकाश में, त्रिकाली द्रव्य आता नहीं है। पर्याय में द्रव्य आता नहीं है। मगर द्रव्य जैसा है, ऐसा ज्ञान आ जाता है।

मुमुक्षु:- जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब आ जाता है, नहीं आ जाता है? यानि प्रतिबिम्ब दर्पण में थोड़ी गया।

उत्तर:- पर्याय का प्रकाश जो है, उसमें सूर्य आता नहीं है। मगर उस प्रकाश (को) सूर्य को प्रसिद्ध करने में कोई दिक्कत है? दिक्कत नहीं है। बस! ऐसे ज्ञान में, उपयोग में, आत्मा जानने में आ रहा है। जानने में आ रहा है, तो उसको जान ले ना। क्यों जानता नहीं है? और अभिन्न है, (उसको) तो (तू) जानता नहीं है, लेकिन भिन्न को जानता है। आत्मा पर को जानता नहीं है क्योंकि परपदार्थ भिन्न है।

और दूसरा, जो परपदार्थ को जानना आत्मा का स्वभाव हो, ख्याल रखना अभी, जो स्वभाव हो, तो मैं सबको बोलता हूँ, आज तक आपने परपदार्थ को तो जाना। नहीं जाना? जाना। जाना? जो स्वभाव हो तो आनंद आना चाहिए। आया? नहीं आया। तो निषेध कर कि पर को जानता नहीं हूँ, जाननहार को जानता हूँ और प्रयोग कर, आनंद आयेगा। आनंद आयेगा, निश्चित आयेगा।

हमारा लड़का है, ५८ साल का। समझे? पढ़ा-लिखा है। तो एक दफ़े मुंबई में उसने मुझसे पूछा। खूब हल्ला हुआ था। मैंने कहा कि आत्मा, ज्ञान में आत्मा ही जानने में आता है, सचमुच, खरेखर (तो) परपदार्थ जानने में आता नहीं है। तो हल्ला मच गया, सारे हिंदुस्तान में नाम हमारा, चकड़ोले चड़ गया। आहाहा! कि लालचंदभाई कहते हैं कि पर को जानता (नहीं) है, तो सर्वज्ञ भगवान तो लोकालोक को जानते हैं। देखो! पक्का नहीं हो तो मचक आ जायेगी आपको। समझे?

तो (मेरे बेटे ने कहा कि) पिताजी ये सारा हल्ला है आपके नाम (से), तो आपके पास क्या न्याय कुछ है? (आप कहते हो) कि आत्मा पर को नहीं जानता है और सारा जगत कहता है कि ज्ञान पर को जानता है। एक बाजू सारा जगत, एक बाजू आप अकेले? तो क्या बात है? कुछ उसमें मर्म है, न्याय है, युक्ति आपके पास है? मैंने कहा कि युक्ति है। अनुभव की युक्ति मैं आपको बताता हूँ। शास्त्र का आधार नहीं दूँगा, संस्कृत की बात नहीं कहूँगा, नय-निक्षेप-प्रमाण का प्रयोग नहीं करूँगा। समझे? तब तो बहुत बढ़िया बात है। बोल! अभी ५८ साल की उम्र हुई तेरी। परपदार्थ को जानते-जानते समय गया? (तो बोला-) कि हाँ। आनंद आया? (तो बोला-) आनंद तो नहीं आया। तो पर को जानना जो स्वभाव हो, तो आनंद आना चाहिए। तो उसने कान पकड़ लिए। बस हो गया, ख़तम।

निषेध कर कि मेरे ज्ञान में ज्ञायक ही जानने में आ रहा है। आहाहा! इस बात (का) थोड़े टाइम प्रयोग तो करो। प्रयोग करने के बाद जो आत्मा जानने में न आवे, तो पर को जाने जाओ। कोई बाधा नहीं। मगर प्रयोग करने वालों को आत्मा जानने में आता ही है। हाँ!

मुमुक्षु:- पंडित जुगलकिशोर जी ने देवलाली में आपके लिए फ़रमाया था कि स्वप्रकाशक ही है आत्मा, इसके लिए लालचंदभाई का नाम भी है और बदनाम भी हैं।

उत्तर:- हाँ! बदनाम भी हैं। नाम भी है और बदनाम भी हैं। ऐसा युगलजी साहब ने बोला था। बराबर है!

बोलो, परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव की जय!

सरल है, धर्म सरल है। कठिन अज्ञानी ने बना रखा है। कठिन नहीं है। अपना स्वरूप समझना कहाँ कठिन है? जैसा स्वरुप है, ऐसा समझना (है)। समझ लो, विपरीत नहीं समझो। वो तो सब स्वांग है। वो तो मनुष्य की पर्याय का स्वांग, कर्म का स्वांग, राग का स्वांग, मोक्ष का भी स्वांग ही है, स्वभाव नहीं है। आहाहा! ऐसा है। आत्मा मोक्षस्वरुप है, त्रिकाल, जिसकी दृष्टि देने से आत्मा का अनुभव होता है। उसका नाम अनुभव, (उस)में मोक्षमार्ग है। अनुभव यानि कि अनुसरण करके परिणमना, उसका नाम अनुभव। उसमें तीन भाव, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र आ जाता है।

ॐ